अधिकार, बीमा और समानता

स्वास्थ्य सेवाएँ और उप्र की स्त्रियाँ

श्वेता पाल

> कभी-कभी होता यह है कि जीवन में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है, उसकी चर्चा हम सबसे कम करते हैं। मनुष्य के स्वस्थ रहने और जीवन की गुणवत्ता से ज़्यादा ज़रूरी कोई चीज़ नहीं है। फिर भी सार्वजनिक विमर्शों और लोकतांत्रिक नीतियों से स्वास्थ्य का मुद्दा एक तरह से ग़ायब है।[1]

ज्याँ द्रेज़ ने यह बात 2004 के अपने एक लेख में कही थीं। पिछले एक दशक का अनुभव बताता है कि शुरुआती न-नुकुर के बाद भारत की समकालीन राजनीति में रोटी, कपड़ा और मकान के साथ-साथ स्वास्थ्य भी एक केंद्रीय मुद्दा बनता जा रहा है। इस दौरान स्त्रियों और शिशुओं की देखभाल के लिए की जाने वाली नीतिगत पहलक़दमियों में कुछ तेज़ी आयी है। दिल्ली में आम आदमी पार्टी ने मोहल्ला क्लीनिक जैसा नवाचार शुरू किया है।[2] इससे पहले राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के ज़रिये संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार (2004-14) ने भी ख़ुद को एक जनहितैषी और लोक-कल्याणकारी सरकार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया था।[3] दिल्ली सरकार का दावा है कि मोहल्ला क्लीनिक के द्वारा वह नागरिकों को न्यूनतम लागत और पहुँच के अंदर स्वास्थ्य-सेवाएँ उपलब्ध कराएगी। इसी प्रकार राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन द्वारा तत्कालीन केंद्र सरकार समाज के सबसे उपेक्षित और ग़रीब तबक़ों तक पहुँचना चाहती थी। 2012-13 की आर्थिक समीक्षा बताती है कि देश की पूरी आबादी को सस्ती और सुलभ जन-स्वास्थ्य-सेवाएँ उपलब्ध कराना एक चुनौती है।[4] इसलिए उसने राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंदर एक उपमार्ग की तलाश की। इसके ज़रिये वह और

[1] ज्याँ द्रेज़ (2017) : 93.

[2] https://www.thequint.com/videos/news-videos/mohalla-clinics-of-aam-aadmi-party-successful,15 नवम्बर, 2017 को देखा गया.

[3] http://www.livemint.com/Politics/ZBFZHyvhRpHOBeKhizvTuO/UPA-flagship-schemes-progress-a-mixed-bag.html, 15 नवम्बर, 2017 को देखा गया.

[4] इकॉनॉमिक सर्वे (2012-13) : 287.

अधिक स्वास्थ्य केंद्रों की स्थापना, चिकित्सकों और निदान करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति से बचने के लिए उपभोक्ता को यह अधिकार देना चाहती थी कि वह अपने मनपसंद चिकित्सालय में उपचार करा ले और उसका भुगतान केंद्र सरकार कर दे। इसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) कहा गया। यह शोधपत्र उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाक़ों में स्वास्थ्य के अधिकार की अवधारणा और देखभाल के ढाँचे के अंदर स्त्रियों द्वारा आरएसबीवाई तक पहुँच बनाने की जद्दोजहद और रुकावटों की पड़ताल करता है। इस पड़ताल से यह भी पता चलता है कि स्त्रियाँ सरकार से और बेहतर नीति की अपेक्षा करती हैं। आलेख में आरएसबीवाई की सामाजिक वास्तविकताओं और उनके प्रति स्त्रियों के नज़रिये की अनुभवजन्य विवेचना की गयी है। यहाँ इस पहलू पर भी विचार किया गया है कि इस योजना से स्त्रियों का मौजूदा जीवन किस प्रकार प्रभावित हुआ है तथा इसका उनके आगामी जीवन पर क्या असर पड़ेगा।

I

स्वास्थ्य-सुरक्षा एवं पहुँच का प्रश्न

लोकतंत्र के प्रसार, सरकार द्वारा समय-समय पर जन-कल्याणकारी उपायों को तवज्जो देने तथा अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसियों की बढ़ती दख़ल के चलते स्त्रियों के सवाल सार्वजनिक बहसों और नीतियों में जगह बनाने लगे हैं। अब यह बात मानी जाने लगी है कि स्त्रियों के स्वास्थ्य संबंधी प्रश्नों को अलग से सम्बोधित करना आवश्यक है। इस विषय पर मौजूदा अकादमिक लेखन से पता चलता है कि स्त्रियों के स्वास्थ्य संबंधी प्रश्नों को देखने-समझने के सैद्धांतिक आधार कैसे होने चाहिए तथा सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों का जेंडर आधारित मूल्यांकन किस प्रकार किया जाना चाहिए। स्वास्थ्य सुविधाओं तक आम जनता की— विशेषकर स्त्रियों की पहुँच और उसे प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं व स्वास्थ्य के सामाजिक पक्ष के संबंध में एक व्यापक लेखन उभर रहा है। इस लेखन से आज़ाद भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार, लोगों की बढ़ती आकांक्षाओं तथा सरकार द्वारा चलाई जाने वाली विभिन्न स्वास्थ्य-सहायता और विस्तार-योजनाओं का एक बृहत् नक़्शा उभरता है।[5] मसलन, स्त्रियों के लिए शुरू की गयी लक्षित जननी सुरक्षा योजना का एक लक्ष्य यह था कि प्रसव का काम चिकित्सकों की देख-रेख में होना चाहिए। इस योजना को एक हद तक सफलता भी मिली है।[6]

स्वास्थ्य सुविधाओं तक स्त्रियों की पहुँच और उससे जनित सशक्तीकरण पर विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने विपुल साहित्य प्रकाशित किया है। इसमें स्वास्थ्य सहित अन्य मुद्दों, जैसे शिक्षा और सूचना के अंतर्संबंधों पर बात की गयी है। उल्लेखनीय है कि सुविधाओं का ढाँचा स्त्री और पुरुषों के लिए अलग-अलग मायने रखता है। यह बात शहरी और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों पर लागू होती है। सुविधाओं के उपयोग और पहुँच का यह अंतर सामाजिक-सांस्कृतिक तथा जननांकीय कारकों पर निर्भर करता है। इसमें नीतियों, संसाधनों और आर्थिक दशा जैसे कारक भी अहम भूमिका अदा करते हैं।[7] विद्वानों ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के क्रम में जेंडरगत असमानताओं की ओर भी संकेत किया है।[8] इन अध्ययनों से पता चलता है कि एक ओर तो लाभार्थियों को योजना से संबंधित सूचनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं है और दूसरी तरफ़ नीतिगत स्तर निगरानी की व्यवस्था भी सुचारु ढंग

[5] संघमित्रा आचार्य (2010) : 208-229. यह लेख ग्रामीण क्षेत्रों में उन बाधाओं का ज़िक्र करता है जिनसे समाज की निचले तबक़े की जातियाँ प्रभावित होती हैं. सुखदेव थोराट (2009) सम्पूर्ण भारत के बारे में बात करते हुए कहते हैं कि स्वास्थ्य सुविधाओं के मामले में दलितों को हाशिये पर डाल दिया गया है. हाशियाकरण की इस प्रक्रिया में थोराट उन कारकों को रेखांकित करते हैं जिनके चलते दलित समुदायों को स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता.

[6] के. एस. ख़ान आदि (2006) : 1066-74.

[7] टिम एंसर और स्टेफ़नी कूपर (2004).

[8] सेबीन सेरस्यौ (2012).

रामशा बानो बताती हैं कि उनके पास इस योजना का स्मार्ट कार्ड तो है, लेकिन... परेशानी ये है कि कार्ड में केवल पति-पत्नी और तीन संतान के इलाज का ही प्रावधान है, जबकि उनके परिवार में आठ संतानें हैं और कार्ड के नियम के अनुसार तीन से ज़्यादा संतानों को योजना का लाभ नहीं मिल सकता। इस प्रकार यह योजना उन परिवारों के अधिकांश सदस्यों को अपने लाभ से बहिष्कृत कर देती है जिनमें परिवार नियोजन न होने के कारण सदस्यों की संख्या राज्य द्वारा अनुमोदित संख्या से ज़्यादा होती है। सूचना के अभाव ...के कारण राज्य की कल्याणकारी योजनाओं के ढाँचे से बाहर धकेल दिये जाते हैं।

से काम नहीं करती।[9] देश के कुछ हिस्सों में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना जैसी योजना का अन्य नामों के अंतर्गत विस्तार किया गया है। मसलन, छत्तीसगढ़ में इसे मुख्यमंत्री स्वास्थ्य बीमा योजना कहा जाता है। सुलक्षणा नंदी और उनके सहयोगी विद्वानों ने अपने अनुसंधान में जेंडरगत पूर्वग्रहों को रेखांकित करते हुए इस योजना की झुग्गी बस्तियों के स्तर पर पड़ताल की है।[10] इसी प्रकार, सिल्विया करपागम और उनके सहयोगियों ने कर्णाटक के हाशियाग्रस्त तबक़ों की स्त्रियों के संघर्षों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना और वाजपेयी आरोग्यश्री योजना के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है।[11]

मानव विकास के संदर्भ में स्वास्थ्य को एक व्यक्तिगत अधिकार माना जाता है। यह केवल रोगों का न होना भर नहीं है, बल्कि इसमें व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक बेहतरी सम्मिलित है। अच्छा स्वास्थ्य उत्पादक श्रमशक्ति का स्रोत होता है। वह केवल जनसांख्यिकीय लाभ उठाने के लिए ही ज़रूरी नहीं होता, बल्कि जनसंख्या के स्थायित्व के लिए भी आवश्यक होता है।[12] आधुनिक मूल्यों के आगमन के साथ व्यक्ति न केवल अपने अस्तित्व के प्रति सजग हुआ है बल्कि सजगता के इस एहसास में उसकी निरोग देह भी शामिल हो गयी है। मानव शरीर के बारे में बढ़ती जानकारी के साथ स्वस्थ समाज का मतलब निरोगी देह वाला समाज भी माना जाने लगा है। जब से राज्य के साथ नागरिकों की मोलभाव करने की क्षमताओं में वृद्धि हुई है, तब से यह विचार भी मजबूत होता गया है कि राज्य को अपने नागरिकों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिए। यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है कि अच्छे स्वास्थ्य का लाभ केवल स्वस्थ व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि पूरे समाज को मिलता है। बेहतर स्वास्थ्य आर्थिक वृद्धि में योगदान देता है। अच्छे स्वास्थ्य के कारण न केवल उत्पादन की हानि पर अंकुश लगाया जा सकता है, बल्कि संसाधनों के उपयोग की दर को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

परम्परागत तौर पर स्वास्थ्य को सार्वजनिक दायरे के बजाय निजी दायरे में रख कर देखा जाता है। एक ज़माने में स्वास्थ्य का आशय रोग की अनुपस्थिति से था। स्वास्थ्य संबंधी प्रावधानों को समाहित करने वाले आरम्भिक क़ानून औद्योगिक क्रांति के युग में बने थे। ब्रिटेन में हेल्थ ऐंड मॉरल अप्रेंटिसेज़ एक्ट (1802)[13] तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य अधिनियम (1848)[14] श्रम की दयनीय स्थितियों से उपजे सामाजिक दबाव का परिणाम थे। मेक्सिको ने सार्वजनिक स्वास्थ्य को संरक्षित करने के लिए

[9] एमिकस एडवाइज़र प्राइवेट लि.(2010).
[10] सुलक्षणा नंदी, राजीब दासगुप्ता एवं समीर गर्ग (2016) : 43-68.
[11] सिल्विया करपागम (2016) : 69-86.
[12] भारत सरकार (2007).
[13] http://www.historyhome.co.uk/peel/factmine/1802act.htm, 14 अक्टूबर, 2018 को देखा गया.
[14] https://web.archive.org/web/20131224102422/http://www.johnrashton.securemachines.co.uk/documentbank/the%20healthy%20city%20and%20the%20ecological%20idea.pdf, 14 अक्टूबर, 2018 को देखा गया.

राज्य की भूमिका पर स्पष्ट ज़ोर दिया है।[15] स्वास्थ्य को सामाजिक मुद्दे के रूप में परिभाषित करने का यह उद्यम 1946 में विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना में जाकर फलीभूत हुआ। इसकी स्थापना से इस समझ को बल मिला कि स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक तौर पर एक वांछनीय स्थिति का द्योतक होता है, न कि मात्र बीमारी या असक्षमता के अभाव का। इस तरह अच्छा स्वास्थ्य एक एकीकृत दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। उसे मनुष्य की ख़ुशहाली से संबंधित समस्त भौतिक और सामाजिक कारकों के समुच्चय के रूप में देखा जाना चाहिए। संगठन का संविधान कहता है कि स्वास्थ्य के सर्वोच्च मानक को प्राप्त करना एक मौलिक अधिकार है जिसे नस्ल, धर्म, राजनैतिक विचार, आर्थिक और सामाजिक भेदभाव जैसी संरचनाओं से मुक्त रखा जाना चाहिए। 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में स्वास्थ्य को सम्मानित जीवन के अधिकार का अंग बताया गया था। इस प्रकार, स्वास्थ्य और विकास को एक-दूसरे का पूरक माना जा सकता है।

एक समतामूलक और समुचित स्वास्थ्य लाभ मुहैया कराने वाली व्यवस्था मानव-उत्पादकता के बेहतर विकास की गारंटी होती है, इसीलिए स्वास्थ्यगत निवेश को कभी-कभी मानव पूँजी में निवेश करने का पर्याय भी माना जाता है। स्वास्थ्य मानव पूँजी का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जो आर्थिक विकास में एक प्रभावशाली भूमिका निभाता है। बुरे स्वास्थ्य का सबसे बड़ा कारण है रोगों की ऊँची दर। इस स्थिति के लिए मुख्यत: पोषण, स्वच्छता और पेयजल की आपूर्ति में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की असमान स्थिति, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की ख़राब दशा, रोगियों की भर्ती करने हेतु समुचित सेवाओं का अभाव, स्वास्थ्य-सेवाओं के उपयोग और सुलभता के लचर ढाँचे तथा लैंगिक भेदभाव जैसे कारक ज़िम्मेदार हैं।

II

भारत में सामाजिक स्वास्थ्य सुरक्षा

सामाजिक सुरक्षा का प्रश्न आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों के लिए कामयाबी की कसौटी माना जाता है। यूरोप के कई देश अपनी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के विस्तार में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा की पहल करते रहे हैं। इधर हाल के वर्षों में निम्न और मध्यम आय वर्ग वाले देशों— चीन, घाना, इंडोनेशिया, मेक्सिको और वियतनाम ने 2000 के दशक में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना जैसी योजनाएँ चालू की हैं। भारत जैसे एक बड़ी ग्रामीण और वंचित जनसंख्या वाले देश में स्वास्थ्य एक गम्भीर मसला है। भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्त्वों से संबंधित अनुच्छेद-47 में राज्य से लोक-स्वास्थ्य में सुधार करने की अपेक्षा की गयी है। इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में स्वास्थ्य को जीवन के अधिकार के रूप में रेखांकित किया है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो भारत सरकार ने स्वास्थ्य के अधिकार की बात बहुत पहले स्वीकार कर ली थी। भारत के संविधान का अनुच्छेद-21 कहता है कि किसी भी व्यक्ति की ज़िंदगी और निजी स्वतंत्रता का हरण नहीं किया जा सकता— यह केवल एक ही शर्त पर किया जा सकता है जब विधि के अनुसार ऐसा करना आवश्यक हो जाए। इसके अलावा उच्चत्तम न्यायालय ने 'बंधुआ मुक्ति मोर्चा' के फ़ैसले में यह बात साफ़ कर दी थी कि अनुच्छेद-21 नीति निर्देशक सिद्धांतों के साथ मिलकर स्वास्थ्य के अधिकार की भी रचना करता है। इस व्याख्या को कसुमेर एजुकेशन ऐंड रिसर्च सेंटर, अहमदाबाद बनाम यूनियन ऑफ़ इण्डिया, फ़रवरी 1995 के मामले में और भी स्पष्ट तरीक़े प्रस्तुत किया गया। फ़ैसले के मुताबिक़ जीवन के अधिकार और निजी स्वतंत्रता में गरिमा से जीवनयापन करने एवं स्वास्थ्य का अधिकार सम्मिलित होगा।

[15] https://www.hsph.harvard.edu/news/features/mexico-universal-health/, 19 अक्टूबर, 2018 को देखा गया.

स्त्रियों की पहली दिक़्क़त यह होती है कि अस्पताल कहाँ मौजूद है, वह उनकी पहुँच से कितनी दूर है और अस्पताल जाने के लिए उनके पास किस प्रकार के साधन हैं। ... अनुसंधान दिखाते हैं कि इस मामले में दूरी एक महत्त्वपूर्ण घटक होती है। ... अगर घर से अस्पताल की दूरी ज़्यादा हो तो स्त्रियाँ स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पातीं... स्त्रियों के पास प्राय: पैसे नहीं होते। और न ही उन्हें ख़र्च करने की स्वतंत्रता होती है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 पर ध्यान देने से यह बात और साफ़ हो जाती है कि सरकार केवल स्वास्थ्य-सेवाओं की उपलब्धता में ही नहीं बल्कि वित्तीय व्यवस्था में भी एक अहम भूमिका निभाती है। सरकार ने समय-समय पर इस बात को स्वीकार किया है कि स्वास्थ्य-सेवाओं के वितरण एवं वित्त की आधारभूत संरचना में कुछ न कुछ कमियाँ हैं जिन्हें दूर किया जाना ज़रूरी है। सरकार मानती है कि स्वास्थ्य-सेवाओं के लिए राजस्व आबंटन में वृद्धि की जानी चाहिए।[16] लेकिन केवल ऐसा करने भर से स्वास्थ्य-सेवाओं में आ रही समस्याओं का समाधान नहीं हो जाएगा। यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि सरकार की नीति एवं कार्यान्वयन का यह अंतर एक गहरी समस्या है।

दरअसल, मौजूदा स्वास्थ्य नीति सर भोरे कमेटी की रिपोर्ट पर आधारित है। अंग्रेज़ सरकार द्वारा 1943 में सर जोसेफ़ विलिएम भोरे की अध्यक्षता में भोरे समिति का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य भारत में स्वास्थ्य-सेवाओं की दशा का आकलन करना था। समिति ने अपनी रिपोर्ट 1946 में पेश की। रिपोर्ट में कहा गया था कि पहले स्तर पर 40,000 की जनसंख्या पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र अवश्य होना चाहिए। इस केंद्र में दो चिकित्सक, एक नर्स और चार से छह स्वास्थ्य सहायकों की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा दूसरे स्तर पर प्रत्येक 20,000 की आबादी वाले इलाक़े में 75 बिस्तरों वाला अस्पताल होना चाहिए।[17] स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति—2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य का मसौदा इसी आधार पर तैयार किया था। इस योजना में रोधात्मक और स्वास्थ्य लाभ के पहलुओं पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया। इस समय योजना सूत्रीकरण की प्रमुख चुनौती थी गुणकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बजाय निवारक एवं उन्नति संबंधित स्वास्थ्य-सेवा व्यवस्था पर ज़्यादा बल देना। आर्थिक समीक्षा (2012-13) में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि ग्रामीण जनसंख्या को एक गुणवत्तापूर्ण, कम ख़र्चीली और सुगम स्वास्थ्य-सेवा उपलब्ध करानी चाहिए। इसमें स्वास्थ्य-सेवाओं की योजना बनाने और प्रबंधन की प्रक्रिया में समुदाय की भूमिका पर विशेष ध्यान दिया गया था।[18]

आज भारत की स्वास्थ्य-व्यवस्था एक त्रि-स्तरीय ढाँचे पर आधारित है जिसमें प्राथमिक, द्वितीय तथा तृतीय स्तर की स्वास्थ्य सुरक्षा सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र तथा अनौपचारिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। समुदाय को सुरक्षात्मक, रोग दूर करने वाली और स्वास्थ्य लाभ पहुँचाने वाली सेवाएँ मुहैय्या कराने के मामले में प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा व्यक्तियों और स्वास्थ्य तंत्र के बीच प्रथम चरण के रूप में कार्य करती है। इस स्तर पर केवल आम और साधारण बीमारियों का इलाज किया जाता है। इसमें मुख्य तौर पर माँ और बच्चे की देखभाल सम्मिलित है जिसमें परिवार नियोजन, टीकाकरण, प्रचलित स्थानीय बीमारियों और चोटों के इलाज, बुनियादी सुविधाओं का प्रावधान— स्वास्थ्य शिक्षा, भोजन और पोषण आदि तथा सुरक्षित पेयजल की समुचित उपलब्धता शामिल है।

---

[16] स्वरूप एवं जैन (2001).

[17] https://www.nhp.gov.in/bhore-committee-1946_pg, 19 अक्टूबर, 2018 को देखा गया.

[18] इकॉनॉमिक सर्वे (2012-13) : 287.

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य की सुरक्षा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और उप-केंद्रों तथा शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्रों व परिवार कल्याण केंद्रों के तंत्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। द्वितीय स्वास्थ्य सुरक्षा से स्वास्थ्य व्यवस्था का दूसरा स्तर इंगित होता है। यहाँ मरीजों को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों से प्रशासनिक उप-केंद्रों में स्थित अस्पतालों के चिकित्सा विशेषज्ञों और अन्य पेशेवरों के पास भेजा जाता है। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, मध्यांतर अस्पताल तथा ज़िला अस्पताल आदि स्वास्थ्य सुरक्षा के द्वितीय स्तर के रूप में कार्य करते हैं। तृतीय स्वास्थ्य सुरक्षा स्वास्थ्य व्यवस्था का तीसरा स्तर है जिसके तहत समुदाय को जटिल बीमारियों से संबंधित परामर्शदात्री सुरक्षा के साथ समग्र सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। भारत में तृतीय स्तर की सुरक्षा मेडिकल कॉलेजों और आधुनिक स्वास्थ्य शोध संस्थानों द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।

आज़ादी के बाद भारत की स्वास्थ्य-नीतियों का मार्गदर्शक सिद्धांत यह रहा है कि स्वास्थ्य-सेवाओं का लाभ सभी समुदायों को समान रूप से मिलना चाहिए। इस उद्देश्य के अंतर्गत स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा की दिशा में कई क़दम उठाए गये हैं। उदाहरण के लिए, भारत सरकार ने 2008 में असंगठित क्षेत्र की अनुमानित 43 करोड़ श्रमिक जनता को सामाजिक सुरक्षा हेतु आधारभूत ढाँचा उपलब्ध कराने के लिए असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पारित किया। समय के साथ भारत सरकार इस तथ्य के प्रति गम्भीर हुई है कि स्वास्थ्य-सेवाओं में असमानता व्याप्त है और यह असमानता ग्रामीण भारत में ज़्यादा दिखाई देती है। 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन शुरू किया गया। इस मिशन के तहत लक्षित समूहों को सामुदायिक आधार पर स्वास्थ्य-सेवाओं के आधारभूत संसाधन उपलब्ध कराए गये तथा चिकित्सकों व औषधियों की आपूर्ति सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया। यह पहल पूर्ति-आधारित है। ग्रामीण ग़रीब जनता की माँग-आधारित स्वास्थ्य-सेवाओं तक पहुँच बनाने के लिए स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को एक हस्तक्षेप के रूप में देखा गया। यहाँ स्वास्थ्य क्षेत्र पर ख़र्च होने वाली राशि का एक बड़ा हिस्सा सीधे जनता के हाथ में दे दिया गया है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना इसी नज़रिये पर आधारित है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना (ईएसआईएस) तथा केंद्र सरकार स्वास्थ्य योजना (सीजीएचएस) जैसी योजनाएँ कुछ निश्चित समूहों के लिए तैयार की गयी हैं, जबकि इस योजना का लक्ष्य असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे लोगों की स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतें पूरी करना है। श्रम एवं रोज़गार मंत्रालय ने यह योजना 2008 में शुरू की थी। इसका प्राथमिक उद्देश्य बीपीएल परिवारों को अस्पताल की नि:शुल्क सुविधाएँ उपलब्ध करा कर आकस्मिक स्वास्थ्य ख़र्चों तथा स्वास्थ्य संबंधी दरिद्रता की स्थिति में वित्तीय सुरक्षा उपलब्ध कराना है। इस योजना के तहत एक परिवार के पाँच सदस्य किसी भी प्रकार की बीमारी होने पर, जिसमें अस्पताल में भर्ती होने की ज़रूरत हो, इस योजना से लाभ उठा सकते हैं। इस योजना के दायरे में आने वाले लोग तीस हज़ार रुपये की सीमा में सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी अस्पताल से अपना इलाज करा सकते हैं। यह एक स्वास्थ्य बीमा है। इससे जुड़ने में मात्र तीस रुपये की रजिस्ट्रेशन फ़ीस देनी पड़ती है। सरकार घर से अस्पताल तक जाने के लिए हर बार सौ रुपये देती है। यह योजना पढ़ने और देखने में तो अच्छी है परंतु जानकारी के अभाव के कारण इसके लाभार्थियों का दायरा काफ़ी संकुचित है। सरकार ने लोगों को कार्ड तो दे दिये हैं परंतु योजना के क्रियान्वयन के बाद इतना समय बीत जाने के बावजूद कार्डधारी उसका इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं।

स्वास्थ्य संबंधी इस पहल में लैंगिक समानता का उल्लेख भी किया गया है। इसकी पुष्टि इस बात से की जा सकती है कि यह योजना किसी परिवार को बेटियों का या केवल परिवार के बेटों का पंजीकरण कराने के लिए बाध्य नहीं करती। लेकिन इस संबंध में यह विचारणीय है कि क्या किसी योजना में स्त्री का नाम दर्ज हो जाने मात्र से यह तय हो जाता है कि ज़रूरत पड़ने पर वह उसका उपयोग कर सकेगी? यह केवल जागरूकता से ही सुनिश्चित किया जा सकता है। इस कार्ड के तहत

मुसहर जाति की फूलकली ने बताया कि जब कभी वह बीमार पड़ती हैं ... तो अपना इलाज और अपने परिवार का इलाज करने के लिए सबसे पहले घरेलू नुस्खे अपनाती हैं। अगर इससे आराम नहीं मिल पाता तो वह उसी गाँव में एक झोलाछाप डॉक्टर से दवा ले लेती हैं, जो कि सात दिनों के लिए 150 रुपये की दवा देता है। गाँव के अंदरूनी हिस्से में रहने वाली यह स्त्री प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सीएससी या सरकारी अस्पताल से इसलिए दवा नहीं ले पाती क्योंकि वह बहुत दूर है। वहाँ तक पहुँचने में उसका बहुत किराया लग जाता है ... एक जैसी दवा देते हैं, इसलिए हम लोग झोलाछाप डॉक्टर से दवा ले लेते हैं।

सरकारी एवं ग़ैर-सरकारी अस्पतालों में इलाज कराया जा सकता है। लेकिन स्त्रियों से बात करने पर पता चलता है कि कई अस्पतालों में स्त्री-चिकित्सक की व्यवस्था ही नहीं होती। क्या स्त्रियाँ इस बात का निर्णय नहीं कर सकतीं कि उन्हें कहाँ इलाज कराना है? कई दफ़ा उन्हें पता ही नहीं होता कि वह स्त्री-डॉक्टर किस अस्पताल में मिलेगी जो उनके 'रोग' का इलाज कर सकती है या कि वह कब और कहाँ मिल सकती है।

स्त्रियों की पहली दिक़्क़त यह होती है कि अस्पताल कहाँ मौजूद है, वह उनकी पहुँच से कितनी दूर है और अस्पताल जाने के लिए उनके पास किस प्रकार के साधन हैं। घाना से संबंधित कुछ अनुसंधान दिखाते हैं कि इस मामले में दूरी एक महत्त्वपूर्ण घटक होती है। अगर घर से अस्पताल की दूरी ज़्यादा हो तो स्त्रियाँ स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पातीं।[19] मैंने गाँवों में काम करते समय पाया है कि स्त्रियों के पास प्राय: पैसे नहीं होते। और न ही उन्हें ख़र्च करने की स्वतंत्रता होती है। यह बात ख़ास तौर पर उन महिलाओं पर लागू होती है जो पूरी तरह परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर होती हैं। यद्यपि वे मज़दूरी करती हैं, 'पैसे कमाती हैं' लेकिन सामाजिक संरचना उन्हें इतनी आज़ादी नहीं देती कि वे अपनी मर्ज़ी से अपना कमाया पैसा ख़र्च कर सकें। आम तौर पर यह माना जाता है कि यदि स्त्री कमाएगी तो स्वतंत्र होगी, लेकिन यहाँ स्थितियाँ विपरीत हैं। ऐसे में स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच का सवाल विकल्प चुनने की आज़ादी का सवाल बन जाता है।

यदि हम नामांकन के आधार पर देखें तो यह योजना सफल प्रतीत होती है। दो करोड़ सत्तानवे लाख बीपीएल परिवारों को स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ पहुँचाने वाली यह योजना कुछ ही सालों में विश्व की सबसे बड़ी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं में शामिल हो गयी है। यह योजना अब तक भारत के लगभग सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के 409 ज़िलों में लागू की जा चुकी है। उपयोग की दृष्टि से भी इस योजना का प्रदर्शन ठीकठाक कहा जा सकता है— 314 ज़िलों में आरएसबीवाई के अंतर्गत अस्पताल के उपयोग की औसत दर 2.6 प्रतिशत है जबकि इसकी तुलना में राष्ट्रीय औसत 2.4 प्रतिशत है और सबसे ग़रीब आबादी के लिए 1.7 प्रतिशत है।[20] परंतु इससे यह अंदाज़ा लगा पाना मुश्किल है कि आरएसबीवाई से स्त्रियाँ किस तरह लाभान्वित हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों के स्वास्थ्य को आज भी प्राथमिकता नहीं दी जाती। उनकी स्वास्थ्य समस्याएँ और उनका इलाज भी सामाजिक, सांस्कृतिक बाधाओं का शिकार है। यदि हम स्त्रियों के स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता व्यवहार की बात करें तो उनका स्वास्थ्य-जागरूकता व्यवहार बीमारी की तीव्रता और उसके लक्षणों की अवधारणा से प्रभावित है। स्त्रियाँ केवल तभी इलाज कराती हैं जब रोग के लक्षण लम्बे समय तक बने रहते हैं या रोग गम्भीर होने लगता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'स्त्रियों की बीमारियों' को आम बात समझते हुए यह माना जाता है कि स्त्रियाँ इलाज नहीं करातीं।[21]

[19] देखें, http//appsso.eurostat.ec.europa.eu/nui/show.do?dataset=hlth_silc_08&lang=en

[20] नैशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइज़ेशन (2006).

[21] अमनदीप कौर शाही एवं हरिंदर सिंह (2015) : 316-327.

III

स्वास्थ्य-सेवाओं की प्रकृति

दक्षिण एशिया में जेंडर असमानता का स्तर भयानक है। इसे हम स्त्रियों की रुग्णता और उनकी मृत्यु दर के संदर्भ में देख सकते हैं। अमर्त्य सेन के अनुसार दक्षिण एशिया (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका) में जहाँ उच्चवर्गीय स्त्रियाँ प्रधानमंत्री बन सकती हैं, वहीं कमज़ोर तबक़े की स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल और पोषण का स्तर बहुत निचले स्तर पर है। इस प्रकार स्वास्थ्य के मामले में जेंडर सहित वर्ग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। स्त्री होने और उस पर भी ग़रीब वर्ग की स्त्री होने से उनकी दशा और शोचनीय हो जाती है।[22] उत्तर प्रदेश में इसे स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। वास्तव में यदि भारत में कोई व्यक्ति ग़रीब है तो इस बात की बहुत सम्भावना होती है कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रहता हो। और इसकी दूसरी सम्भावना यह होती है वह अनुसूचित जाति या जनजाति या सामाजिक भेदभाव झेलने वाले किसी समूह का सदस्य हो। वह कुपोषित, बीमार और ख़राब स्वास्थ्य का शिकार भी हो सकता है। वह निरक्षर या अच्छी शिक्षा से वंचित और केवल निम्न स्तर की दक्षता से लैस हो सकता है। सम्भावना इस बात की भी है कि वह कुछ विशेष राज्यों में रहता हो—जैसे बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश।[23] ग़रीबी के कारण अनुसूचित जाति के सदस्यों का स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। सुखदेव थोराट बताते हैं कि कुछ लोग बड़ी से बड़ी बीमारी से नहीं मरते क्योंकि वे महँगी दवाएँ ख़रीद सकते हैं, जबकि बहुत लोग पेचिश, बुखार या अन्य सामान्य बीमारियों से मर जाते हैं। इसके पीछे आर्थिक तंगी और सूचना के अभाव जैसे कारक ज़िम्मेदार होते हैं। अनुसूचित जातियों की स्त्रियाँ रक्तक्षीणता की शिकार देखी गयी हैं। इसका एक मूलभूत कारण ये है कि अनुसूचित जातियों के लोगों की स्वास्थ्य-सेवाओं तक पहुँच ही नहीं हो पाती।[24] यह तथ्य समाचार पत्रों में आयी कुछ हालिया रपटों से भी प्रमाणित होता है। ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य-सेवाएँ बदहाल हो चुकी हैं। ग्रामीण भारत में सर्जन और फ़िज़ीशियन की लगभग 83 प्रतिशत कमी है। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों पर 81 प्रतिशत विशेषज्ञों की कमी है।[25] स्वास्थ्य बीमा के दायरे में मात्र तीन प्रतिशत लोग ही आते हैं।[26]

तो ऐसे माहौल में ग्रामीण इलाहाबाद या उत्तर प्रदेश के किसी अन्य इलाक़े में स्वास्थ्य-सेवाओं के उन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती। यहाँ हमारा उद्देश्य स्वास्थ्य-सेवाओं की बदहाली को उघाड़ कर दिखाना नहीं है, बल्कि हम बताना चाहते हैं कि इस असमान और उपेक्षित स्पेस में स्त्रियाँ अपना स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए क्या-क्या जतन करती हैं और राज्य अपनी राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के ज़रिये उनकी इस जद्दोजहद में किस प्रकार हस्तक्षेप करता है। हम यहाँ यह भी देखना चाहते हैं कि जब राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की सुविधाओं तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती तो अपने रोज़मर्रा के जीवन में वे इससे निपटने के लिए क्या तौर-तरीक़े अपनाती हैं। एनएसएसओ (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन) के आँकड़े दर्शाते हैं कि उत्तर प्रदेश में ग्रामीण स्त्री अपने स्वास्थ्य के मामले में पुरुष के मुक़ाबले कम जागरूक है।[27] बीमारी के प्रति यह उदासीनता अथवा इलाज न करा पाने

---

[22] अमर्त्य सेन (2005) : 207.

[23] रामचंद्र गुहा (2007) : 711.

[24] सुखदेव थोराट (2009) : 110-20.

[25] देखें, http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-rural-healthcare-not-all-are-equal-where-health-coverage-lags-behind/article8961062.ece seen on 10/08//2016.

[26]http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-medical-insurance-gaping-holes-in-the-safety-net/article8970330.ece, 11 अगस्त, 2016 को देखा गया.

[27] नैशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाइज़ेशन (2006) : वही.

स्त्रियों के पास प्रायः पैसे नहीं होते। और न ही उन्हें ख़र्च करने की स्वतंत्रता होती है। यह बात ख़ास तौर पर उन महिलाओं पर लागू होती है जो पूरी तरह परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर होती हैं। यद्यपि वे मज़दूरी करती हैं, 'पैसे कमाती हैं' लेकिन सामाजिक संरचना उन्हें इतनी आज़ादी नहीं देती कि वे अपनी मर्ज़ी से अपना कमाया पैसा ख़र्च कर सकें। आम तौर पर यह माना जाता है कि यदि स्त्री कमाएगी तो स्वतंत्र होगी, लेकिन यहाँ स्थितियाँ विपरीत हैं। ऐसे में स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच का सवाल विकल्प चुनने की आज़ादी का सवाल बन जाता है।

की स्थिति कई कारणों का समेकित परिणाम होती है। कई बार उनके आसपास ऐसा व्यक्ति ही नहीं होता जो उनकी मदद कर सके तो कई दफ़ा उन्हें उपलब्ध व्यक्ति पर विश्वास नहीं होता; कई बार लम्बे इंतज़ार के कारण उनकी हिम्मत टूट जाती है तो कई बार उनके पास इलाज के लिए ज़रूरी पैसे नहीं होते। ऐसे में, वे या तो बीमारी के प्रति उदासीन हो जाती हैं या फिर झाड़-फूँक, गण्डे-ताबीज़ आदि पर यक़ीन करने लगती हैं। योजनाओं में विश्वास की कमी इस तथ्य के चलते आती है कि रोगी को स्वास्थ्य केंद्र में उपलब्ध कराए गये उपचार से लाभ न मिला हो। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या एक बार फिर बढ़ रही है।

चिकित्सीय उपकरणों के अभाव, रोगों के निदान के लिए जाँच सुविधाओं की कमी और ख़र्च का सवाल समस्या को और गम्भीर बना देता है।[28] स्वास्थ्य लाभ हासिल करने के लिए वित्तीय संसाधनों का अभाव स्वास्थ्य सुविधाओं के ढाँचे में एक मूलभूत असमानता की ओर संकेत करता है। इलाज न करा पाने की विवशता के पीछे ग़रीब लोग अकसर वित्तीय कारणों का ही उल्लेख करते हैं।[29] इस मामले में निम्न आय वर्ग के लोगों की भी यही राय है।[30] जैसा कि हमने पीछे ज़िक्र किया था, स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ उठाने की प्रक्रिया में व्यक्ति के निवास-स्थान से स्वास्थ्य केंद्र की दूरी का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी से यह बात तय होती है कि व्यक्ति स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ किस सीमा तक उठा पाएगा। कतिपय अध्ययनों से पता चलता है कि अगर स्वास्थ्य केंद्र की दूरी ज़्यादा होती है तो समय, मेहनत तथा ख़र्च जैसे कारकों के चलते वहाँ उपलब्ध सुविधाओं का वास्तविक उपयोग नहीं हो पाता। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में किसी भी क़िस्म की बीमारी के लिए लोग प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सरकारी अस्पताल, निजी चिकित्सकों और क्लीनिकों तथा निजी अस्पतालों की सेवाएँ लेते हैं, पर जब हम केवल ग्रामीण क्षेत्रों की बात करते हैं तो कुछ और क़िस्म की सेवाएँ भी शामिल होती हैं— जैसे झाड़-फूँक, ताबीज, फ़र्ज़ी डॉक्टर, झोलाछाप डॉक्टर, और मेडिकल स्टोर से खुद ही दवा लेने की आदत।

IV

झोलाछाप डॉक्टर बनाम प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र

2004-05 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य लेखा के आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में केंद्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारें सम्मिलित रूप से कुल स्वास्थ्य ख़र्च का केवल 20 प्रतिशत ही ख़र्च करती हैं। स्वास्थ्य ख़र्च का 78 प्रतिशत से अधिक ओओपी (आउट ऑफ़ पॉकेट) यानि क्षमता से बाहर का ख़र्च होता है। ऐसी दशा में ग़रीबों और स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल करना बेहद मुश्किल काम बन जाता है। विशेषज्ञ

[28] ऋतु नारंग (2011) : 36-49.
[29] यरलिनी बलराजन एवं अन्य (2011) : 505-15.
[30] अनिल गुम्बर (2011) : 133-72.

कहते हैं कि ऊँची विकास दर भारत सरकार को यह वित्तीय गुंजाइश प्रदान करती है कि वह अपने स्वास्थ्य-तंत्र में निहित असमानताओं की पहचान और आधारभूत ढाँचे का वित्तपोषण कर सके तथा इससे उबरने के लिए ज़रूरी क़दम उठा सके। 2005 में भारत सरकार ने ग्रामीण जनता, विशेषकर कमज़ोर समूहों को टिकाऊ तथा गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) शुरू किया था। स्वास्थ्य सुविधाओं को लेकर मिशन का प्रयास यह रहा है कि लक्षित क्षेत्र में स्वास्थ्य का एक ऐसा विकेंद्रित तंत्र विकसित किया जाए जिसकी देखरेख में स्थानीय समुदाय स्वयं सक्रिय भूमिका निभाए। पूर्ति के परिप्रेक्ष्य से देखें तो स्वास्थ्य सुरक्षा के वित्तपोषण की एक निश्चित सीमा है। इस तथ्य को सामने रखते हुए केंद्र तथा राज्य सरकारों ने स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के ज़रिये माँग आधारित वित्तपोषण के कई क़दम उठाए हैं।

माँग आधारित तंत्र का सीधा-सा अर्थ यह है कि अस्पताल माँग के आधार पर धन कमाएँ, जो कि जनता द्वारा जुटाया जाएगा। इसका एक अर्थ यह भी है कि स्वास्थ्य तंत्र केवल सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली निश्चित धनराशि पर निर्भर नहीं कर सकता। स्वास्थ्य सुविधाओं की आय उपचार की सुविधा का चयन करने वाले लोगों की आय पर निर्भर करती है। भारत सरकार ने समाज के कमज़ोर तबक़ों को वित्तीय सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए माँग आधारित वित्तपोषण के कई तरीक़े शुरू किये हैं। इस दिशा में 2003 की सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना (यूएचआईएस) को पहला क़दम माना जा सकता है। इस योजना के अंतर्गत एक सीमा में पड़ने वाले लोगों को स्वास्थ्य सुरक्षा का लाभार्थी बनाया गया। यह योजना सार्वजनिक क्षेत्र की बीमा कम्पनियों द्वारा लागू की गयी थी। इसके बाद कई राज्य सरकारों ने भी ऐसी योजनाएँ शुरू कीं। इन योजनाओं का उद्देश्य राज्य की जनता के कमज़ोर तबक़ों को स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराना था।

इन योजनाओं द्वारा स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराने का उद्देश्य प्रशंसनीय और बेहद आवश्यक था। लेकिन कुछ कारणों के चलते ये योजनाएँ अपने इच्छित लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायीं। राज्य स्तरीय स्वास्थ्य बीमा योजना की विफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि इसके अधिकतर लाभ तृतीय क्षेत्र तक सीमित थे और सामान्यत: द्वितीय क्षेत्र की स्वास्थ्य सुरक्षा इसके दायरे में नहीं आती थी। इसका दूसरा कारण यह था कि राज्य के बाहर का क्षेत्र स्वास्थ्य बीमा के दायरे में नहीं आता था। इन बिंदुओं पर विचार करने के बाद सरकार को लगा कि समाज के कमज़ोर तबक़ों को वित्तीय सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना देश में राष्ट्रीय स्तर पर लागू करनी होगी। इस तरह, अन्य सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के अनुभवों से सीखते हुए एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना शुरू करने का निर्णय लिए गया। बीपीएल आबादी को इस योजना का पहला लक्ष्य माना गया। इस योजना का उद्देश्य अस्पतालों पर ओओपी ख़र्च घटाना और साथ ही लक्षित समूहों की गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुरक्षा तक पहुँच बढ़ाना है।

V

क्या खाएँ, क्या पिएँ, क्या लेकर अस्पताल जाएँ?

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद ज़िले के ग्रामीण इलाक़ों में भी लागू की गयी है। 2011 की गणना के हिसाब से 59,54,351 लोगों की आबादी वाला इलाहाबाद प्रदेश का सबसे बड़ा ज़िला है। पूरे ज़िले को गंगा और यमुना नदियाँ तीन भागों में बाँटती हैं। ज़िला मुख्यालय की तरफ़ से यमुनापार के इलाक़े कम विकसित माने जाते हैं जबकि गंगापार के इलाक़े बेहतर स्थिति में हैं। इस अध्ययन में शामिल बहादुरपुर ब्लॉक गंगापार क्षेत्र में है, जबकि शंकरगढ़ यमुनापार में हैं। इस शोध का उद्देश्य यह जानता है कि ग्रामीण स्त्रियों की आरएसबीवाई तक कितनी पहुँच है और योजना के लाभ हासिल करने में उन्हें किन दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध यह भी बताने

का प्रयास करता है कि वर्तमान परिदृश्य में हाशिये के समूहों, जैसे अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ी जातियों की स्त्रियों ने स्वास्थ्य बीमा के द्वारा किस प्रकार अपना सशक्तीकरण किया है और जब उनकी आरएसबीवाई तक पहुँच नहीं हो पाती तो उस स्थिति में कौन से उपाय अपनाती हैं? इस प्रकार, यह शोध नीति और अपेक्षा के बीच की दरारों को चिह्नित करने का प्रयास करता है।

इस शोध के लिए तक़रीबन 240 स्त्रियों का चयन किया गया है जिसमें से 70 से 80 प्रतिशत स्त्रियाँ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की हैं। हमने जिन महिलाओं से बात की है उनमें अधिकांश कोल और चमार समुदायों से ताल्लुक़ रखती हैं। इनमें से 120 स्त्रियाँ शंकरगढ़ से हैं और 120 बहादुरपुर विकासखण्ड से। शंकरगढ़ में रहने वाली ज़्यादातर महिलाएँ पत्थर तोड़ने का काम करती हैं जबकि बहादुरपुर की ज़्यादातर स्त्रियाँ बीड़ी उद्योग और दैनिक खेतिहर मज़दूरी जैसे कार्यों से जीविका अर्जित करती हैं। उनके परिवार के सभी सदस्य अपनी आजीविका चलाने के लिए कुछ-न-कुछ काम करते हैं। आमतौर पर इन महिलाओं के घर कच्चे थे जिनमें पंखे और बिजली की थोड़ी बहुत सुविधा तो थी लेकिन दोनों ही विकासखण्डों में पीने के पानी का अभाव है।

अध्ययन के लिए बहादुरपुर से रामापुर और शंकरगढ़ से कटहा को चुना गया है। इस बातचीत को वर्गीकृत सूचनाओं तक साक्षात्कार पद्धति से दर्ज किया गया है। आरएसबीवाई की जानकारी, उसके सामान्य प्रावधानों, लाभों, पात्रता, बीमारी के दौरान इलाज के लिए स्वयं से धन जुटाने या क़र्ज़ लेने, ज़मीन आदि बेचने जैसी स्थितियों और अन्य अनुभवों की चर्चा की गयी है। इसमें इलाहाबाद में गंगा के पार स्थित गाँवों में सर्वाधिक जबकि यमुनापार स्थित शंकरगढ़ में सबसे कम नामांकन दर रिकार्ड की गयी है। कटहा गाँव ज़िला मुख्यालय से सात किलोमीटर दूर इलाहाबाद-झाँसी मार्ग पर स्थित है। इस गाँव में जब मैंने स्त्रियों और पुरुषों से उनके बीमार पड़ जाने पर उपचार के तरीक़े के बारे में पूछा तो मुसहर जाति की फूलकली ने बताया कि जब कभी वह बीमार पड़ती हैं तो अपना इलाज और अपने परिवार का इलाज करने के लिए सबसे पहले घरेलू नुस्खे अपनाती हैं। अगर इससे आराम नहीं मिल पाता तो वह उसी गाँव में एक झोलाछाप डॉक्टर से दवा ले लेती हैं, जो कि सात दिनों के लिए 150 रुपये की दवा देता है। गाँव के अंदरूनी हिस्से में रहने वाली यह स्त्री प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सीएससी या सरकारी अस्पताल से इसलिए दवा नहीं ले पाती क्योंकि वह बहुत दूर है। वहाँ तक पहुँचने में उसका बहुत किराया लग जाता है। उसने बताया कि वे लोग तो बुखार, पेट दर्द और मलेरिया होने पर भी एक जैसी दवा देते हैं, इसलिए हम लोग झोलाछाप डॉक्टर से दवा ले लेते हैं। मैंने घर के पुरुष सदस्यों के उपचार के तरीक़े के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि जब हमारे मालिक बीमार पड़ जाते हैं तो हम शहर जाकर अच्छे प्राइवेट चिकित्सक से इलाज कराने की सोचते हैं क्योंकि अगर इन्हें कुछ हो गया तो पूरे परिवार का क्या होगा!

जब मैंने उसी गाँव में एक और स्त्री से उपचार के बारे में बात की तो उसने बताया कि वह या उनके परिवार का कोई भी सदस्य बीमार पड़ने पर घरेलू उपचार के साथ-साथ झाड़-फूँक भी कराता है। वह बताती हैं कि शंकरगढ़ के जिस इलाक़े में उनका घर है, वह पहाड़ी इलाक़ा है और इसके कारण वहाँ बहुत सारी आत्माएँ रहती हैं जो हर वक़्त उनके परिवार को तंग करती रहती हैं। उनके हिसाब से इस समस्या का इलाज कोई चिकित्सक नहीं कर सकते, इसलिए जब कभी भी उनके परिवार का कोई बीमार पड़ता है तो वह झाड़-फूँक और घरेलू उपचार कराती हैं। मेरे पूछने पर कि जब आपके घर के पुरुष बीमार पड़ते हैं तो क्या उपचार का तरीक़ा यही रहता है तो उन्होंने कहा कि नहीं, तब हम कोशिश करके शहर के अच्छे प्राइवेट चिकित्सक से इलाज कराते हैं क्योंकि आत्माएँ पुरुषों को तंग नहीं करतीं। उसने बताया कि अभी कुछ ही दिन पहले उनकी बेटी बीमार हो गयी थी। उसे बार-बार दौरे पड़ते थे तो झड़वाने पर उसके ऊपर से पचपन आत्माएँ निकली थीं। गाँव की एक बुज़ुर्ग स्त्री ने स्वास्थ्य और उपचार के तरीक़े के बारे में बताया कि स्त्रियों को चिकित्सक की क्या ज़रूरत है, वे तो भगवान की देन हैं, उन्हें कुछ नहीं हो सकता

और वैसे भी स्त्रियों को एक न एक बीमारी तो लगी ही रहती है जिन्हें औरतें आपस में ही सुलझा लेती हैं। उन्हें चिकित्सक की क्या ज़रूरत!

शंकरगढ़ के कटहा गाँव में रहने वाली स्त्री कमला देवी ने बताया कि जब वह बीमार हो जाती हैं तो उनके लिए स्वास्थ्य केंद्र तक पहुँचना ही सबसे बड़ी परेशानी होती है। उनके गाँव से स्वास्थ्य केंद्र लगभग आठ किलोमीटर दूर है। वे बताती हैं: 'जब हम स्वस्थ रहते हैं तो भी उतनी दूर जाने के लिए सोचना पड़ता है, तो बीमार होने पर वहाँ तक जाना असम्भव-सा लगता है। हमें अपने साथ किसी न किसी को ले जाना पड़ता है जिसकी वजह से हमें दो प्रकार के नुक़सान होते हैं। पहला, बीमारी की वजह से होने वाली आर्थिक हानि और दूसरा बीमारी की अवधि में हम अपने काम पर नहीं जा पाते जिसकी वजह से हमें कोई मज़दूरी भी नहीं मिल पाती। दवा और इलाज पर होने वाले ख़र्च का प्रबंध भी हमें ही करना पड़ता है। स्वास्थ्य केंद्र तक पहुँचने में हमारा बहुत सारा पैसा ख़र्च हो जाता है। इसके कारण हमें यह सोचना पड़ता है कि इतनी दूर स्वास्थ्य केंद्र तक जाकर अपना इलाज कराएँ या झोलाछाप चिकित्सक से दवा ले कर ठीक हो जाएँ। जब कभी बड़ा मर्ज़ होगा तो स्वास्थ्य केंद्र पर जाकर इलाज करा लेंगे'।

कटहा में ही रहने वाली एक और स्त्री बताती है कि कुछ दिनों पहले उसके पेट में बहुत दर्द था जिसे ठीक करने के लिए उसने कुछ दिन तक झोलाछाप चिकित्सक से दवा ली, पर आराम न मिलने पर उसने स्वास्थ्य केंद्र से दवा लेने की सोची। लोगों से मशविरा कर वह अपना स्मार्ट कार्ड लेकर कर्मा हेल्थ सेंटर गयी जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अधीन आने वाला अस्पताल है। वहाँ के कर्मचारियों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। उसने बताया कि 'पहले तो उसे बहुत देर तक अपनी बारी का इंतज़ार करना पड़ा। जब बारी आयी और तो चिकित्सक ने बताया कि कार्ड से केवल तभी दवा कराई जा सकती है जब अस्पताल में भरती होने की बात हो। अगर मुफ़्त वाली दवा चाहिए तो प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में चली जाओ और अगर जल्दी ठीक होना है तो दवा लिख दे रहा हूँ, बाहर से लो। मेरी फ़ीस सौ रुपये हुई। दवा ले लो आराम मिल जाएगा। चिकित्सक की फ़ीस और दवा दोनों मिला के हमे 350 रुपये ख़र्च करने पड़े और अस्पताल तक जाने में मेरे 110 रुपये भी ख़र्च हो गये जो हमारी एक दिन की मज़दूरी के बराबर है'।

उसी गाँव की एक स्त्री सुमन देवी ने अपना अनुभव साझा करते हुए बताया कि वह केवल और केवल झोलाछाप चिकित्सकों पर ही विश्वास करती हैं जिसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पहले जब वे बीमार होती थीं तो प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से दवा लाने की कोशिश करती थीं, परंतु वहाँ की अव्यवस्था देख कर उनका मन अब वहाँ जाने का नहीं करता। उसने आगे बताया कि पुरुष और स्त्री-चिकित्सकों की उपलब्धता की बात ही भूल जाओ। हमारा जो मर्ज़ है उसके बारे में पूरी जानकारी सुने बिने ही दवा दे दी जाती है। यदि आपको बुख़ार हो तो भी वही दवा, खाँसी होने पर भी वही दवा, पेट में होने वाली सभी तकलीफ़ों के लिए भी वही दवा, यदि मलेरिया हो जाए तो भी वही दवा! सोचने वाली बात यह है कि स्वास्थ्य केंद्र में बहुत सारे चिकित्सकों की सूची तो चस्पाँ है, जैसे कान के इलाज के लिए अलग, आँख के मर्ज़ के लिए अलग और अन्य बीमारियों के लिए अलग-अलग चिकित्सक। लेकिन वहाँ कोई आता ही नहीं है। वहाँ दूसरी परेशानी है किसी चिकित्सक का हमेशा नहीं रहना। अगर कोई आपात स्थिति पैदा हो जाए तो वहाँ कोई भी चिकित्सक मौजूद नहीं रहता और हर बार चिकित्सकों के आने-जाने का समय बदलता रहता है। यह एक गम्भीर समस्या है।

मैंने शहर के बेहद नज़दीक बहादुरपुर के रामापुर ग्रामीण क्षेत्र की स्त्रियों से बात की। बहादुरपुर शहर से पक्की सड़क से जुड़ा हुआ है। सरकारी बसें एवं टैक्सी पूरे दिन चलती रहती हैं। गाँव में बहुत सारी स्त्रियों से बात करने पर पता चला कि इलाज में देरी या इलाज न करा पाने का एक बड़ा कारण यह है कि अस्पताल में स्त्री-चिकित्सक मौजूद ही नहीं होती। इसके अलावा कुछ सामाजिक और

सांस्कृतिक बाधाएँ भी स्त्रियों को उचित इलाज कराने से रोकती हैं। भारत में स्त्रियाँ निजता के अभाव, स्वास्थ्य-सेवाओं में स्त्री-डॉक्टरों की कमी, इलाज की क़ीमत, अधीनस्थ सामाजिक दर्जे तथा इलाज की सुविधाओं के कारण चिकित्सकीय सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाती। एक स्त्री को एचआईवी रोग हो गया था। यह बात नैशनल एड्स कंट्रोल ऑर्गनाइज़ेशन द्वारा मुफ़्त जाँच से पता चली थी। पर वह अपना इलाज नहीं कराना चाहती। उसका मानना है कि अगर लोगों को इस बात का पता चल गया तो वे क्या कहेंगे! वह बताती है कि वह मरना पसंद करेगी पर अगर एक बार उनके रिश्तेदारों और आस-पड़ोस के लोगों को यह पता चल गया कि उसे यह बीमारी है तो वे उसे घटिया मान लेंगे और उसका जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए जैसा चल रहा है, वैसा चलने दिया जाए।

इन सब स्त्रियों से बात करने पर यह भी पता चला कि इन सभी के पास राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के कार्ड हैं, पर वे उसका फ़ायदा नहीं उठा पा रही हैं। आधारभूत स्तर पर सामान्य बीमारियाँ होने पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना सफल प्रतीत होती है। लेकिन जब बीमारी की अवधि लम्बी हो जाती है या एक बार इलाज करा लेने पर बीमारी ठीक नहीं होती है तो लोग संकट में पड़ जाते हैं। यदि स्त्री ग़रीब हुई और इस बीमा योजना के द्वारा अनुमोदित राशि समाप्त हो गयी तो वह संकट में पड़ जाती है। तमिलनाडु से संबंधित अपनी एक रिपोर्ट से यह तथ्य ज़ाहिर होता है कि भीषण और जानलेवा रोगों में सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजनाएँ नाकाफ़ी साबित होती हैं। शहर में तीमारदारों के रहने और सामान्य भोजन का ख़र्चा भी महँगा पड़ता है।[31] इसी प्रकार ऐसी कई स्त्रियों ने बताया कि जब राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना में अनुमोदित राशि उनके कार्ड में समाप्त हो गयी तो वे संकट में पड़ गयीं। कई बार ऐसा होता है कि इलाज के दौरान ही तीस हज़ार की राशि समाप्त हो जाती है। कुछ मामलों में सूचना के अभाव में चिकित्सक महँगे और अनावश्यक जाँच की सलाह दे देते हैं। इसमें औषधि पर ख़र्च होने वाली राशि में स्वत: कमी हो जाती है। इलाज के बाद मरीज़ की तीमारदारी और उसके भोजन पर आने वाला ख़र्च इस बीमा योजना में शामिल नहीं है। ऐसे में समाज के निचले तबक़े की स्त्रियाँ इलाज कराने के बाद यदि दुबारा बीमार पड़ जाती हैं तो उनके पास कोई विकल्प नहीं बचता है। वृद्ध या अकेली स्त्रियों के लिए इस योजना का लाभ उठाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त, जैसा मैंने इलाहाबाद के गाँवों की स्त्रियों से बातचीत में पाया है, इस बीमा योजना में अभी कोई शिकायत निपटान तंत्र का अभाव है।[32] सरकार केवल कार्ड उपलब्ध करा के अपनी ज़िम्मेदारी से भाग नहीं सकती। उसे इस योजना के लाभार्थियों और उनकी परेशानियों पर भी ध्यान देना चाहिए।

शंकरगढ़ के गाँव कटहा, जो लगभग 500 वर्ग मीटर में फैला हुआ है, बनीपुर तहसील का एक हिस्सा है। इसमें लगभग 70 से 80 परिवार रहते हैं जिनकी कुल आबादी लगभग 480 से 550 की होगी। इनमें क़रीब 250 लोग वोटर हैं। इस गाँव में सबसे अधिक कोल समुदाय के लोग रहते हैं। बहादुरपुर के रामपुर गाँव की जनसंख्या लगभग 28,986 लोगों की है जिनमें से 19,000 लोग वोटर सूची में हैं। यहाँ सबसे ज़्यादा जनसंख्या मुस्लिम समुदाय की है जो लगभग 55 फ़ीसदी है। यह गाँव 700 वर्ग मीटर में फैला हुआ है।

फूलपुर में रहने वाली एक स्त्री रामशा बानो बताती हैं कि उनके पास इस योजना का स्मार्ट कार्ड तो है, लेकिन उनके सामने सबसे बड़ी परेशानी ये है कि कार्ड में केवल पति-पत्नी और तीन संतान के इलाज का ही प्रावधान है, जबकि उनके परिवार में आठ संतानें हैं और कार्ड के नियम के अनुसार तीन से ज़्यादा संतानों को योजना का लाभ नहीं मिल सकता। इस प्रकार यह योजना उन परिवारों के अधिकांश सदस्यों को अपने लाभ से बहिष्कृत कर देती है जिनमें परिवार नियोजन न होने के कारण

---

[31]http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-medical-insurance-gaping-holes-in-the-safety-net/article8970330.ece, 12 अगस्त, 2016 को देखा गया.

[32] देखें, सिल्विया करपागम, अखिला वासन एवं विजय कुमार सीथप्पा (2016) : 69-86.

सदस्यों की संख्या राज्य द्वारा अनुमोदित संख्या से ज़्यादा होती है। ऐसे परिवार न केवल ग़रीब हैं बल्कि सूचना के अभाव, जागरूकता, परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने में असमर्थता के कारण राज्य की कल्याणकारी योजनाओं के ढाँचे से बाहर धकेल दिये जाते हैं। रामशा बानो कहती हैं कि बीमार होना एक ऐसी समस्या है, जो कहीं भी और कभी भी आ सकती है। जब यह कार्ड बन रहा था तो उनकी उलझन यह थी कि वे अपने किस बच्चे को इसके अधीन दर्ज कराएँ और किसे छोड़ें? जिस दौरान मैं उनसे बात करने गयी थी, उससे कुछ दिन पहले उनके एक बच्चे के जिगर में पानी भर गया था। लेकिन वे उसका इलाज इस कार्ड से नहीं करा सकती थीं क्योंकि उसका नाम कार्ड में नहीं था। उसका इलाज उन्हें एक निजी अस्पताल में करवाना पड़ा। उन्हें इस बात की कोई जानकारी भी नहीं थी कि क्या वे उसका नाम किसी तरीक़े से कार्ड में जुड़वा सकती हैं। उनके पति भी हमेशा बीमार रहते हैं और उनके पास ऐसा कोई सहारा नहीं है जो उनके लिए दौड़-भाग कर सके।

स्मार्ट कार्ड होने के बावजूद स्त्रियाँ उससे कुछ विशेष प्रकार के स्वास्थ्य लाभ नहीं उठा पा रही हैं। किसी को पहुँच की दिक़्क़त है तो किसी को उचित दवा और इलाज न मिल पाने की परेशानी है। यह भी पाया गया है कि एक जैसी दवा ही सभी तरह की बीमारियों में देकर सरकारी अस्पताल पीछा छुड़ा लेते हैं। जहाँ कुछ महिलाएँ अपनी सभी संतानों को स्मार्ट कार्ड के विवरण में दर्ज ना करा पाने से परेशान हैं, वहीं कुछ महिलाएँ ऐसी भी हैं जिनके बच्चों के नाम तो स्मार्ट कार्ड के विवरण में दर्ज हैं किंतु जानकारी के अभाव के कारण उन्हें यह पता नहीं चल पाता कि इलाज कैसे कराएँ। इस योजना का एक अन्य दुखद पहलू यह भी है कि जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा, विशेषकर महिलाओं को इस योजना से संबंधित न्यूनतम जानकारी तक नहीं है। वह न तो इस योजना का नाम सही ढंग से जानती हैं और न ही योजना के तहत दिये जाने वाले स्मार्ट कार्ड को पहचान पाती हैं। यदि हम स्वास्थ्य को एक अधिकार के रूप में देखते हैं तो इस योजना का दुखद पहलू यह है कि वह लोगों को यह अधिकार केवल एक सीमित दायरे में ही मुहैया कराती है। व्यक्ति अधिकार का इस्तेमाल तभी कर सकता है, जब उसे उस अधिकार से जुड़े सभी फ़ायदों की जानकारी हो। कोई योजना किसी व्यक्ति विशेष और औसतन जनसंख्या पर कैसे प्रभाव डालेगी, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि सामान्य जन उसके बारे में कितना और क्या जानता है।

मैंने अपने शोध में पाया है कि मरीज को स्वास्थ्य केंद्र तक ले जाने के लिए सरकार जो भत्ता देती है, उसके बारे में पुरुष लाभार्थियों की अपेक्षा महिला लाभार्थियों को कम जानकारी है। उन परिवारों में जहाँ कोई पुरुष नहीं है या परिवार के पुरुष रोज़गार के लिए बाहर गये हैं, उनमें जागरूकता का स्तर लगभग शून्य के स्तर पर है। यह एक चिंताजनक बात है। सरकारी योजनाओं के केंद्र में होने के बावजूद ऐसी महिलाएँ जन कल्याणकारी योजनाओं से बाहर हो जाती हैं। होना तो यह चाहिए था कि इस योजना का लाभ महिलाएँ ज़्यादा लेतीं, लेकिन जैसा कि मैंने फ़ील्डवर्क के दौरान पाया, इस योजना में सबसे पीछे महिलाएँ ही हैं। महिलाओं को उन अस्पतालों की जानकारी ही नहीं थी, जो इस योजना के तहत इलाहाबाद ज़िले में अधिसूचित किये गये थे। यदि योजना के बारे में जागरूकता और उस तक पहुँच एवं उपयोग की बात की जाए तो यह बात साफ़ तौर पर पता चलती है कि जानकारी केवल योजना में लग रहे पंजीकरण शुल्क और परिवार के पाँच सदस्य के लाभ पाने तक ही सीमित थी। इतनी कम जानकारी मरीज़ को अस्पताल तक नहीं पहुँचा सकती। संचार के साधन और सुविकसित सरकारी प्रचार-प्रसार तंत्र के बावजूद इस योजना के बारे में लोगों की जानकारी का स्तर एक कल्याणकारी लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है।

निष्कर्ष यही निकल कर आता है कि सरकार द्वारा योजनाओं को लागू भर कर देना इस बात की पुष्टि नहीं करता है कि परिधि पर पड़े तबक़े, विशेषकर महिलाएँ, वृद्ध और बच्चे इसका फ़ायदा उठा ही लेंगे। जब तक सूचना और जन-कल्याण के बारे में कोई विचार करते समय सामाजिक-आर्थिक

और सांस्कृतिक कारकों को महत्त्व नहीं दिया जाएगा तब तक एक समावेशी और जन-कल्याणकारी नीति लागू नहीं की जा सकती। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना निस्संदेह एक प्रशंसनीय योजना है जिसने तरह-तरह की बीमारी, सरकारी एवं ग़ैर सरकारी अस्पतालों को जोड़ने, दवा, आने-जाने का व्यय आदि जैसे तमाम पहलुओं पर ध्यान दिया गया है। इसकी वाक़ई बहुत ज़रूरत थी। कुछ हद तक तक यह योजना कई प्रदेशों में कारगर भी रही है, लेकिन यह सामाजिक विमर्शों पर अपनी स्थायी छाप नहीं छोड़ पाई है। यदि यह योजना ऐसा करने में सफल हो पाती तो स्वास्थ्य के अधिकार का आंदोलन और आगे जाता दिखाई देता। अभी तक सरकार ही इस योजना को आगे बढ़ाने की भूमिका में रही है, जबकि विशेषकर उत्तर प्रदेश में इसके पक्ष में किसी जनांदोलन की सुगबुगाहट सुनाई नहीं पड़ती।

संदर्भ

अनिल गुम्बर (1997), 'बर्डन ऑफ़ डिज़ीज़ ऐंड कोस्ट ऑफ़ इल हेल्थ इन इंडिया : सेटिंग प्रिओरिटीज फ़ॉर हेल्थ इंटरवेंशन ड्युरिंग नाइन्थ प्लैन', *मार्जिन,* 29 (2) : 133-172.

अमर्त्य सेन (2005), *द आर्गुमेंटेटिव इंडियन : राइटिंग्ज़ ऑन इंडियन कल्चर, हिस्ट्री ऐंड आइडेंटिटी,* पेंगुइन बुक्स, नयी दिल्ली.

अमनदीप कौर शाही एवं हरिंदर सिंह (2015), 'इम्पैक्ट ऑफ़ राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना ऑन बिलो पॉवर्टी लाइन पॉपुलेशन : ऐन इंटरस्टेट एनैलिसिस', *जर्नल आफ़ हेल्थ मैनेजमेंट,* खण्ड 17, अंक 3, सितम्बर, 2015.

इकॉनॉमिक सर्वे (2016-17), ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

इकॉनॉमिक सर्वे (2012-13), ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

एमिकस एडवाइज़र प्राइवेट लिमिटेड (2010), *राष्ट्रीय स्वस्थ्य बीमा योजना : स्टडीइंग जौनपुर,* उत्तर प्रदेश.

के.एस. खान एवं अन्य (2006), 'वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन एनालायज़िंग द कॉज़ेज़ ऑफ़ मैटरनिटी डेथ : अ सिस्टेमेटिक रिव्यू', *द लांसेट,* 367 (9516).

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2007), गृह मंत्रालय.

ज्याँ द्रेज़ (2017), *सेंस ऐंड सॉलिडैरिटी : झोलावाला इकॉनॉमिक्स फ़ॉर एवरीवन,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

टिम एंसर एवं स्टेफ़नी कूपर (2004), 'ओवरकमिंग बैरियर्स टू हेल्थ सर्विस एक्सेस ऐंड इन्फ़्लुएंसिंग दी डिमांड साइड थ्रू पर्चेजिंग', *डॉक्यूमेंट्स ऐंड रिपोर्ट्स,* वर्ल्ड बैंक.

नैशनल सैंपल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन (2006), 'मोर्बिडीटी हेल्थ केयर ऐंड द कंडीशन ऑफ़ दी ऐजिड', एनएसएसओ, 60वाँ राउंड, जनवरी-जून (2004), *मिनिस्ट्री ऑफ़ स्टेटिस्टिक्स ऐंड प्रोग्राम इम्प्लीमेंटेशन,* भारत सरकार, नयी दिल्ली.

रामचंद्र गुहा (2007), *इंडिया आफ़्टर गाँधी,* पिकाडोर, लंदन.

ऋतु नारंग (2011), 'डिटरमाइनिंग क्वालिटी ऑफ़ पब्लिक हेल्थ केयर सर्विसेज़ इन रूरल इंडिया', *क्लिनिकल गवर्नेंस : एन इंटरनैशनल जर्नल,* 16 (1).

संघमित्रा आचार्य (2010), 'कास्ट ऐंड पैटर्स ऑफ़ डिस्क्रिमिनेशन इन रूरल पब्लिक हेल्थ केयर सर्विस', सुखदेव थोराट एवं कैथरिन एस. न्यूमैन (सं.), *ब्लॉक्ड बाई कास्ट : इकॉनॉमिक डिस्क्रिमिनेशन इन मॉडर्न इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

सिल्विया करपागम, अखिला वासन एवं विजय कुमार सीथप्पा (2016), 'फ़ालिंग थ्रू दी गैप्स : एक्सेसिंग केयर अंडर हेल्थ इंश्योरेंस स्कीम इन कर्नाटक', *इंडियन जर्नल ऑफ़ जेंडर स्टडीज़,* 23 (1).

सुखदेव थोराट (2009), *दलित्स इन मॉडर्न इंडिया : सर्च फ़ॉर कॉमन डेस्टिनी,* सेज़ पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

सुलक्षणा नंदी, राजीब दासगुप्ता एवं समीर गर्ग (2016), 'अंकवरिंग कवरेज़ ऐंड यूटिलाइज़ेशन ऑफ़ द युनिवर्सल हेल्थ इंश्योरेंस स्कीम, छत्तीसगढ़ बाई वुमॅन इन स्लम ऑफ़ रायपुर', *इंडियन जर्नल ऑफ़ जेंडर स्टडीज,* 23 (1).

सेबीन सेरस्यौ (2012), *जेंडर इक्विटी इन एक्सेस टू हेल्थ केयर : हाउ सोशल हेल्थ प्रोटेक्शन कैन टैकल एक्सेस बैरियर्स फ़ॉर वुमॅन ऐंड इम्प्रूव जेंडर रिलेटेड इनइक्विटीज़ :* अ केस स्टडी ऑन इंडिया'ज़ नैशनल हेल्थ इंश्योरेंस स्कीम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना, शोध-प्रबंध, ईएचईएसपी.

यरलिनी बलराजन, एस. सेल्वराज एवं एस.वी. सुब्रमनियन (2011), 'हेल्थ केयर ऐंड इक्विटी इन इंडिया', *द लांसेट,* 377 (9764).

वेब पृष्ठ

http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-medical-insurance-gaping-holes-in-the-safety-net/article8970330.ece

http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-medical-insurance-gaping-holes-in-the-safety-net/article8970330.ece seen on 11/08/2016

http://www.thehindu.com/sci-tech/health/policy-and-issues/malady-nation-rural-healthcare-not-all-are-equal-where-health-coverage-lags-behind/article8961062.ece seen on 10/08//2016

https://www.nhp.gov.in/bhore-committee-1946_pg

https://web.archive.org/web/20131224102422/http://www.johnrashton.securemachines.co.uk/documentbank/the%20healthy%20city%20and%20the%20ecological%20idea.pdf
https://www.hsph.harvard.edu/news/features/mexico-universal-health/